कंगना रनौत एवं रविकिशन के प्रश्नों के आलोक में.जया बच्चन का मुखर विरोध.......!

कला कला के लिए होनी चाहिए या जीवन के लिए इस पर साहित्य के पुरोधाओं और पाठकों के बीच सदैव से विमर्श चलता आया है। पर आज यह विमर्श साहित्य एवं कला की परिधि से निकल आम जन तक पहुँच गया है। निर्विवाद रूप से तकनीक के आविष्कार-आगमन के पश्चात सिनेमा कला की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम बनकर उभरा। दृश्य एवं श्रव्य दोनों के मिश्रण से उत्पन्न आनंद ने सिनेमा को अपार लोकप्रियता दी। इतना कि इससे दर्शक बँधते चले गए। ठीक है कि मनुष्य का आकलन-मूल्यांकन मनुष्य की तरह ही होना चाहिए, उन्हें महामानव बनाना-मानना न्यायोचित नहीं। पर भारत जैसे भाव-प्रधान देश की आम जनता से ऐसी शुष्कता एवं बौद्धिक तटस्थता की अपेक्षा रखना भी बेमानी है।

सिनेमा प्रारंभ में जनसरोकारों एवं जन-भावनाओं को लेकर चली। स्वाभाविक है कि उसे आशातीत सफलता एवं स्वीकार्यता मिली। कालांतर में जैसे-जैसे तकनीक विकसित होती गई, भव्यता-नवीनता-प्रयोगधर्मिता-कल्पनाशीलता का संचार हुआ, संवाद-संगीत-अभिनय का रुपहले पर्दे पर भव्य, जीवंत एवं सजीव चित्रण होता गया, सिनेमा और उससे जुड़े कलाकारों का दर्शकों के दिल-दिमाग़ पर जादू-सा असर होता चला गया। बाज़ार एवं विज्ञापन-जगत के परोक्ष-प्रत्यक्ष प्रयासों से सितारा एवं सुपर सितारा की छवि निर्मित एवं द्युतिमान हुईं। अपार यश, वैभव एवं लोकप्रियता के रथ पर सवार इन सिने कलाकारों को समाज ने न केवल सिर-माथे बिठाया, बल्कि महानायकत्व के तमाम विशेषणों से भी उन्हें विभूषित किया। उनकी छवि दैवीय आभा से दैदीप्यमान व्यक्तित्व की बनती चली गई। ऐसी लोकप्रियता, प्रसिद्धि, समृद्धि अतिरिक्त सतर्कता, अनुशासन एवं संतुलन की अपेक्षा रखती है, उन्हें सहेज-संभालकर रखना पड़ता है, अन्यथा यह व्यक्ति के सिर चढ़कर बोलने लगता है और दशकों के पुरुषार्थ एवं साधना से अर्जित-निर्मित छवि-मान-प्रतिष्ठा-पूँजी क्षणों में धराशायी हो जाती है। और सिने जगत और उसके तमाम सितारों के साथ आज ऐसा ही कुछ होता दिख रहा है।

समय आ गया है कि इन सिने कलाकारों को अपना ईमानदार मूल्यांकन एवं आत्मविश्लेषण करना चाहिए कि ऐसा किया हुआ कि आज अचानक उनकी साख़ पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं, उनके सरोकारों पर सवाल उठाए जा रहे हैं ? क्या यह किसी एक के प्रश्न उठाने का परिणाम है ? क्या यह स्थिति रातों-रात निर्मित हुई ? गहराई से विचार करने पर विदित होता है कि सिनेमा और मुख्य रूप से पिछले कुछ दशकों की मुंबइया सिनेमा ने जो दुनिया दर्शकों के सामने रची-गढ़ी-परोसी वह लोक से

भिन्न एक कृत्रिम एवं वायवीय दुनिया है। उससे लोक का कोई रागात्मक या वास्तविक संबंध ही नहीं जुड़ता। उसमें हमारे गाँव-घर, खेत-खलिहान, प्रकृति-परिवेश, लोक-जीवन के रंग-रूप और गंध ग़ायब हैं। उसमें भारतीय जन को अपना प्रतिबिंब, अपनी सोच, अपने संस्कार, अपनी संस्कृति के दर्शन नहीं होते। सिनेमा के पूरे परिदृश्य से भारतीय जन और मन ओझल हो चला है। सिनेमा के माध्यम से जो पात्र और परिवेश उभरकर सामने आ रहे हैं, वे दर्शकों को अपने जीवन और परिवेश से सर्वथा भिन्न एवं पृथक प्रतीत होते हैं।

भारतीय जीवन-मूल्यों, मानबिन्दुओं, जीवनादर्शों एवं प्रतिमानों का चित्रण व फ़िल्मांकन हाल की सिनेमा में बहुधा बहुत कम देखने को मिलता है। जिन मध्यमवर्गीय सपनों, संघर्षों एवं संवेदनाओं की झलक कभी-कभार उसमें दिखती भी है, उसमें भी दर्शकों का भावनात्मक शोषण अधिक और यथार्थ कम होता है। वहाँ दृश्यों-परिस्थितियों का अतिरंजनापूर्ण चित्रण आम है। बाज़ार की माँग एवं दर्शकों की रुचियों के नाम पर वे जैसी हिंसा, अश्लीलता, फूहड़ता परोसते हैं, उसे लेकर भी जनमानस में बड़ा असंतोष एवं क्षोभ रहा है। कला का उद्देश्य केवल मुनाफ़ा एवं मनोरंजन तक सीमित न रहकर दर्शकों की रुचियों का परिष्करण एवं परिमार्जन भी होना चाहिए।

कंगना रनौत एवं बीजेपी सांसद रविकिशन के प्रश्नों के आलोक में आज सिने-जगत को इन बृहत्तर संदर्भों एवं सरोकारों के बारे में भी पुनर्विचार करना चाहिए। परंतु आत्मावलोकन एवं समग्र चिंतन के बजाय आज सिने-जगत के कई स्थापित कलाकार इन प्रश्नों और समस्याओं को ही सिरे से ख़ारिज करने पर आमादा हैं। क्या सचमुच बीजेपी सांसद रविकिशन द्वारा संसद में उठाया गया मुद्दा सिने-जगत और उससे जुड़े कलाकारों को बदनाम करने जैसा सरलीकृत मुद्दा है? क्या जिस थाली में खाया, उसी में छेद करने जैसे भावात्मक मुहावरों को उछाल इतने जटिल-गंभीर प्रश्नों से मुँह मोड़ा जा सकता है? क्या यह एक गंभीर समस्या के समाधान के प्रयास एवं पहल को ख़ारिज करना नहीं है?

ऐसे उतावले भरे एवं प्रतिक्रियात्मक निष्कर्षों से क्या आम जन में यह संदेश नहीं जाएगा कि दाल में अवश्य कुछ काला है? अच्छा तो यह रहता कि ड्रग्स के धंधे और सेवन में कुछ सितारों के लिप्त पाए जाने के आरोपों और सुर्खियों के बीच कुछ जिम्मेदार एवं सरोकारधर्मी कलाकारों को स्वप्रेरणा से सामने आकर समाज एवं व्यवस्था को आश्वस्त करना चाहिए था कि वे ड्रग माफियाओं के विरुद्ध छेड़े गए इस अभियान में आम जन के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर दृढ़ता एवं निष्पक्षता से खड़े हैं। लेकिन आश्चर्य यह है कि जो कलाकार सुशांत की मौत एवं सिने जगत में व्याप्त नशे की लतों पर भयावह मौन साधे बैठे थे, वे भी मुखर होकर जया बच्चन के समर्थन और रविकिशन एवं कंगना रनौत के विरोध में लामबंद होते दिख रहे हैं। इसे स्वस्थ, निःस्वार्थ एवं निष्पक्ष चलन तो कदापि नहीं कहा जा सकता। देश को मथने एवं व्यथित करने वाले ऐसे तमाम मुद्दों पर सदी के महानायक माने जाने वाले अमिताभ बच्चन की चुप्पी जहाँ पहले ही जनमानस को निराश एवं अधीर कर रही थी, वहीं उनकी पत्नी जया बच्चन का इस मुद्दे पर संसद में मुखर विरोध इन स्थापित कलाकारों की सोच एवं नीयत पर सवाल खड़े करता है।

सिने-जगत के इन स्थापित कलाकारों की जिम्मेदारी बड़ी है। युवा वर्ग पर इनका व्यापक प्रभाव है। वे उन्हें आदर्श मान उनका अनुसरण करते हैं। अतः इन कलाकारों का दायित्व बनता है कि वे इन आरोपों के बरक्स अपने जीवन और व्यवहार में बदलाव लाएँ। निजता की ओट लेकर अपराध की श्रेणी में आने

वाली आदतों एवं जीवन-शैली का सुविधावादी बचाव न करें। उन्हें अपने जीवन के विरोधाभासों एवं विसंगतियों को दूर कर सर्व स्वीकृत जीवन-व्यवहार एवं आचरण आत्मसात करने का प्रयास करना चाहिए। अन्यथा भारतीय जन-मन के बीच दिन-प्रतिदिन उनकी महत्ता एवं प्रासंगिकता कम होती चली जाएगी।

संपर्क
प्रणय कुमार
9588225950